जय गुरु हीरा | श्री महावीराय नमः | जय गुरु मान

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जैनागम स्तोक वारिधि

चतुर्थ कक्षा

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

सामायिक स्वाध्याय भवन

प्लॉट नं. 2, नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)

फोन : 0291-2630490, 2636763, WhatsApp No. 7610953735

email: shikshanboardjodhpur@gmail.com

website : www.jainratnaboard.com

पाँच समिति और तीन गुप्ति का थोकडा

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 24 वें अध्ययन में पाँच समिति और तीन गुप्ति का अधिकार इस प्रकार चलता है :-

समिति- संयम की रक्षा के लिये उपयोग पूर्वक की जाने वाली मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को 'समिति' कहते हैं।

1. ईर्या समिति, 2. भाषा समिति, 3. एषणा समिति, 4. आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति, 5. उच्चार प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति।

(1) **ईर्या समितिः**- संयम की रक्षा हेतु चलने-फिरने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को ईर्या समिति कहते हैं, **ईर्या समिति के चार कारण हैं- 1. आलम्बन 2. काल 3. मार्ग 4. यतना।**

1. आलम्बन के तीन भेद- 1. ज्ञान 2. दर्शन 3. चारित्र।

2. काल से- दिन को चले (अर्थात् रात्रि में विहार नहीं करे, किन्तु दिन में विहार करे)

3. मार्ग से - कुपथ-को छोड़कर सुपथ पर चले।

4. **यतना के चार भेद : 1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।**

1. **द्रव्य से**- षट्काय के जीवों को तथा काँटा आदि अजीव पदार्थों को देखकर चले।
2. **क्षेत्र से**- झूसरा **प्रमाण** अर्थात् चार हाथ सामने देखकर चले।
3. **काल से**- दिन को देखकर व रात्रि में पूँज कर चले।
4. **भाव से**- पाँच इन्द्रियों के विषय और पाँच स्वाध्याय के भेद इन दस बोलों को वर्जकर (टालकर) उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित) चले, दस बोल- 1. शब्द 2. रूप 3. गंध 4. रस 5. स्पर्श 6. वाचना 7. पृच्छना 8. परिवर्तना 9. अनुप्रेक्षा और 10. धर्मकथा।

(2) **भाषा समिति**- निरवद्य वचन बोलने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को भाषा समिति कहते हैं। वचन के दोष - 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया, 4. लोभ, 5. हास्य, 6. भय, 7. मौखर्य (वाचालता) और 8. विकथा। इन आठ दोषों में एकाग्रता को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं। **1. क्रोध में एकाग्रता**- जैसे कोई पिता, अति क्रोधित होकर अपने पुत्र के प्रति बोले कि- 'तू मेरा पुत्र नहीं है' और पास में खड़े हुए मनुष्यों को कहे कि 'बांधों बांधों इसे' इत्यादि। 2. **मान में एकाग्रता**- जैसे कोई पुरुष अभिमान से गर्वित होता हुआ बोले कि - 'जाति आदि में मेरी बराबरी करने वाला कोई नहीं है।' 3. **माया में एकाग्रता**- जैसे कोई पुरुष अनजान जगह रहा हुआ दूसरों को ठगने के लिए पुत्रादि के विषय में बोले कि - 'न तो यह मेरा पुत्र है और न मैं इसका पिता हूँ' इत्यादि। 4. **लोभ में एकाग्रता**- जैसे कोई वणिक् दूसरों की वस्तु को भी अपनी कहे। 5. **हास्य में एकाग्रता**- जैसे कोई मजाक में कुलीन पुरुष को भी अकुलीन कह कर बुलावे। 6. **भय में एकाग्रता**- जैसे किसी ने किसी प्रकार का अकार्य किया और दूसरे ने उससे पूछा कि - 'तूँ तो वही है जिसने अमुक समय में अमुक अकार्य किया था?' तब वह भय से कहे कि- 'मैं उस समय उस जगह नहीं था' इत्यादि। 7. **मौखर्य में एकाग्रता**- जैसे कोई बकवादी, दूसरों की निंदा करता ही रहे। 8. **विकथा**- (स्त्री आदि कथा) **में एकाग्रता**- जैसे कोई बोले कि अहो! स्त्री के कटाक्ष कैसे हैं ? इत्यादि। इस प्रकार क्रोधादि में एकाग्रता होने पर प्रायः शुभ भाषा नहीं बोली जाती। इसलिए इन पूर्वोक्त आठ दोषों को छोड़ कर बुद्धिमान् साधु को निरवद्य (निर्दोष) और अवसर देख कर परिमित वचन बोलने चाहिएँ।

भाषा समिति के चार भेद- 1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. **द्रव्य से**- सावद्य भाषा 1. कठोर, 2. कर्कश, 3. छेदक, 4. भेदक, 5. निश्चयात्मक, 6. सावद्य, 7. क्लेशोत्पादक और 8. मिश्र, इन आठ भाषाओं को छोड़कर साधु निरवद्य भाषा बोले।
2. **क्षेत्र से**- (रास्ते) मार्ग में चलता हुआ नहीं बोले।
3. **काल से**- प्रहर रात्रि बीतने पर (सूर्योदय तक) जोर से नहीं बोले।
4. **भाव से**- उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित) बोले।

(3) **एषणा समिति**- 42 दोष टालकर भिक्षा आदि लेने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को एषणा समिति कहते हैं।

एषणा समिति के तीन भेद - **1. गवेषणैषणा 2. ग्रहणैषणा 3. परिभोगैषणा।**

1. **गवेषणैषणा**- आहार आदि ग्रहण करने के पहले शुद्धि - अशुद्धि की खोज करना गवेषणैषणा है।
2. **ग्रहणैषणा**- आहारादि ग्रहण करते समय शुद्धि - अशुद्धि का ध्यान रखना ग्रहणैषणा है।
3. **परिभोगैषणा**- आहारादि भोगते समय शुद्धि - अशुद्धि का उपयोग रखना परिभोगैषणा है।

गवेषणैषणा के चार भेद -1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. **द्रव्य से**-प्रासुक एषणीय और कल्पनीय वस्तु की गवेषणैषणा करे।

(**प्रासुक** अर्थात् जो जीवों से रहित बन चुकी है, अचित्त बनी हुई है। ऐसी आहार आदि सामग्री ग्रहण करना। **एषणीय**- उद्गम, उत्पादन और शंकित आदि के ४२ दोषों को टाल कर आहार आदि ग्रहण करना। **कल्पनीय**- साधु की कल्प मर्यादा के अनुसार आहार आदि ग्रहण करना। स्तनपान कराती हुई स्त्री से, गर्भवती स्त्री से आहार आदि लेना, घर के आगे भिखारी, गाय, कुत्ते आदि खड़े होने पर भी उस घर से आहार आदि लेना अकल्पनीय है।)

2. **क्षेत्र से**- दो कोस के क्षेत्र में गवेषणैषणा करे।
3. **काल से**- दिन को गवेषणैषणा करे, रात्रि को नहीं करे।
4. **भाव से**- 32 दोष रहित गवेषणैषणा करे।

16 उद्गम के और 16 उत्पादना के, ये गवेषणैषणा के 32 दोष इस प्रकार हैं :-

उद्गम के 16 दोष- देने वाले दाता के निमित्त (कारण) से लगते हैं।

गाथा-

आहाकम्मुद्देसिय, पूईकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा, पाहुडियाए पाओअर कीय पामिच्चे ।।1।।
परियट्टिए अभिहडे, उब्भिन्ने मालोहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ।।2।।

1. **आहाकम्म**- साधु के निमित्त छः काय का आरंभ कर बना हुआ आहार आदि लेवे तो आधाकर्मी दोष।
2. **उद्देसिय**- जिस साधु के निमित्त जो आहार आदि बनाया है, उसे वही साधु लेवे तो आधाकर्मी और अन्य साधु लेवे तो औद्देशिक दोष।
3. **पूईकम्मे**- सूझते आहार में आधाकर्मी का अंश मात्र भी मिल जाय तथा हजार घर के आंतरे आधाकर्मी आहार का अंश मात्र भी मिल जाय और वह लेवे तो पूर्तिकर्म दोष।
4. **मीसजाए**- गृहस्थ अपने और साधु के लिये शामिल बनाकर देवे तो मिश्रजात दोष।

5. **ठवणा**- साधु के निमित्त अशनादि आहार स्थापना कर रखे, अन्य को नहीं देवे तो स्थापना दोष।

6. **पाहुडियाए**- साधु के लिये मेहमानों को आगे-पीछे करे तो प्राभृतिक दोष।

7. **पाओअर**- अंधेरे में प्रकाश करके अथवा अंधेरे से उजाले में लाकर देवे तो प्रादुष्करण दोष।

8. **कीय**- साधु के निमित्त खरीद कर देवे तो क्रीत दोष।

9. **पामिच्चे**- साधु के निमित्त उधार लाकर देवे तो प्रामृत्य दोष।

10. **परियट्टिए**- साधु के निमित्त अपनी वस्तु देकर बदले में दूसरी वस्तु लाकर देवे तो परिवर्तित दोष।

11. **अभिहडे**- साधु के निमित्त सामने लाकर देवे तो अभिहृत दोष।

12. **उब्भिन्ने**- लेपनादि-ढक्कन आदि अयतना से खोलकर देवे तो उद्भिन्न दोष। अथवा पीछे जिसका लेपन-ढक्कन आदि अयतना से लगाया जाय वैसा आहारादि देना।

13. **मालोहडे**- सीढ़ी-निसरणी आदि लगाकर ऊँचे, नीचे, तिरछे आदि स्थान से जिससे अयतना होवे, वहाँ से वस्तु निकालकर देवे तो मालापहृत दोष।

14. **अच्छिज्जे**- निर्बल से सबल जबरदस्ती छीन कर देवे तो आच्छेद्य दोष।

15. **अणिसिट्ठे**- दो के शामिल की वस्तु एक दूसरे की बिना आज्ञा के देवे तो अनिःसृष्ठ दोष।

16. **अज्झोयरए**- बनते हुए आहारादि में साधु को आया जानकर उसकी मात्रा में बढ़ोतरी कर दे तो अध्यवपूरक दोष।

उत्पादना के 16 दोष- ये दोष जीभ की लोलुपता वश साधु लगाते हैं।

गाथा- *धाई दूई निमित्ते य, आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।*
कोहे माणे माया लोहे, य हवंति दस ए ए ।।3।।
पुव्विपच्छासंथवं, विज्जा मंते य चुण्ण जोगे य।
उप्पायणाई दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ।।4।।

1. **धाई**- धाय माता की तरह बालक आदि को खिलाकर आहारादि लेवे तो धात्री दोष।

2. **दूई**- दूति की तरह संदेश पहुँचा कर आहारादि लेवे तो दूति दोष।

3. **निमित्ते**- निमित्त-ज्ञान से भूत-भविष्य-वर्तमान काल के लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरणादि बतलाकर आहार आदि लेवे तो निमित्त दोष।

4. **आजीव**- अपनी जाति-कुल आदि बताकर आहारादि लेवे तो आजीव दोष।

5. **वणीमगे**- रंक-भिखारी की तरह दीनपन से माँगकर आहारादि लेवे तो वनीपक दोष।

6. **तिगिच्छे**- वैद्य की तरह चिकित्सा करके आहारादि लेवे तो चिकित्सा दोष।

7. **कोहे**- क्रोध करके गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखला कर आहारादि लेवे तो क्रोध दोष।

8. **माणे**- मान करके आहारादि लेवे तो मान दोष।

9. **माया**- कपटाई (माया) करके आहारादि लेवे तो माया दोष।

10. **लोहे**- लोभ करके अधिक आहारादि लेवे अथवा लोभ बतलाकर लेवे तो लोभ दोष।

11. **पुव्विपच्छासंथवं**- पहले या पीछे दाता की प्रशंसा करके आहारादि लेवे तो पूर्व पश्चात् संस्तव दोष।

12. **विज्जा-** जिसकी अधिष्ठात्री देवी हो अथवा जो साधना से सिद्ध की गई हो, उसे विद्या कहते हैं। ऐसी विद्या के प्रयोग से आहारादि लेवे तो विद्या दोष।

13. **मंते-** जिसका अधिष्ठाता देव हो अथवा जो बिना मात्रा के अक्षर विन्न्यास मात्र हो, उसको मंत्र कहते हैं। ऐसे मंत्र के प्रयोग से आहारादि लेवे तो मन्त्र दोष।

14. **चुण्ण-** एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु मिलाने से अनेक तरह की सिद्धि होती हैं। ऐसे अंजनादि के प्रयोग से आहारादि लेवे तो चूर्ण दोष।

15. **जोगे-** लेपनादिक सिद्धि(जिसका लेप करने से आकाश में उड़ना, जल पर चलना आदि हो) बतलाकर आहार आदि लेवे तो योग दोष।

16. **मूलकम्मे-** गर्भस्तंभन, गर्भाधान, गर्भपातादि ऐसी जड़ी-बूँटी दिखलाकर अथवा औषध बतलाकर आहारादि लेवे तो मूलकर्म दोष।

2. ग्रहणैषणा के 4 भेद -

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. **द्रव्य से-** योग्य कल्पनिक-प्रासुक वस्तु को ग्रहण करे।
2. **क्षेत्र से-** दो कोस के क्षेत्र में से ग्रहण करे।
3. **काल से-** दिन में देखे हुए पाट-पाटलादि रात्रि को भी ग्रहण कर सकते हैं।
4. **भाव से-** शंकितादि दस दोष रहित ग्रहण करे।

दस दोष इस प्रकार हैं :-

10 दोष - ये गृहस्थ तथा साधु दोनों को लगते हैं।

गाथा- *संकिय मक्खिय निक्खित्त, पिहिय साहरिय दायगुम्मीसे।*
अपरिणय लित्त छड्डिय, एसण दोसा दस हवंति।।

1. **संकिय-** गृहस्थ अथवा साधु को शंका हो जाने के बाद आहारादि लेवे तो शंकित दोष।
2. **मक्खिय-** सचित्त पानी से हाथ की रेखा, बाल भीगें हों, उसके हाथ से आहारादि लेवे तो म्रक्षित दोष।
3. **निक्खित्त-** सचित्त वस्तु पर रक्खा हुआ निर्दोष आहारादि लेवे तो निक्षिप्त दोष।
4. **पिहिय-** निर्दोष वस्तु सचित्त से ढँकी हो, वह लेवे तो पिहित दोष।
5. **साहरिय-** सचित्त वस्तु जिस बर्तन में पड़ी हो, वह वस्तु दूसरे बर्तन में डालकर, उसी बर्तन से योग्य आहारादि लेवे तथा पश्चात् कर्म होने की सम्भावना हो उस घर से आहार लेवे तो साहृत दोष।
6. **दायग-** अंधा, लूला, लंगड़ा आदि से (अयतना से अथवा अयतना करता बहरावे) लेवे तो दायक दोष।
7. **उम्मीसे-** मिश्र वस्तु लेवे तो उन्मिश्र दोष।
8. **अपरिणय-** बिना शस्त्र परिणत(पूरा अचित्त न बना हुआ) लेवे तो अपरिणत दोष।
9. **लित्त-** तुरन्त की लीपी हुई भूमि आदि हो उस पर से जाकर आहारादि लेवे तो लिप्त दोष।
10. **छड्डिय-** अशनादि का छाँटा(बूँद) गिरता होवे और लेवे तो छर्दित दोष।

3. परिभोगैषणा के चार भेद -

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव

1. **द्रव्य से-** आहार, उपासरा, वस्त्र, पात्र आदि निर्दोष भोगवे।
2. **क्षेत्र से-** सर्व क्षेत्र में।
3. **काल से**- पहले प्रहर का आहार-पानी चतुर्थ प्रहर में नहीं भोगवे।
4. **भाव से-** माँडला के पाँच दोष टालकर उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित) भोगवे।

पाँच दोष इस प्रकार हैं :-

5 दोष - ये साधु को आहार करते समय लगते हैं :-

1. **संजोयणा-** अच्छा स्वाद या गंध उत्पन्न करने के लिए संयोग मिलाना संयोजना दोष है।
2. **अपमाणं-** तृष्णा अथवा जिह्वा के स्वाद के लिए खुराक (प्रमाण) से अधिक आहार करना अप्रमाण दोष है।
3. **इंगाले-** भोजन में गृद्ध होकर उसके स्वाद की प्रशंसा करते हुए खाना इंगाल दोष है।
4. **धूमे-** प्रतिकूल रूप, रस और गंध की निंदा करते हुए घृणा से भोजन करना धूम दोष है।
5. **कारणे-** साधु 6 कारण से आहार करे व 6 कारण से आहार छोडे, इनके विपरीत करे तो कारण दोष।

आहार करने के 6 कारण - साधु 6 कारणों से आहार करते हैं -

गाथा- *वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।*
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए।।

1. क्षुधा वेदनीय की शान्ति के लिये।
2. गुरु, ग्लान, नवदीक्षित, तपस्वी आदि की वैयावृत्त्य के लिये।
3. मार्ग आदि की शुद्धि के लिये।
4. संयम की रक्षा के लिये।
5. प्राणों की रक्षा के लिये।
6. धर्म का चिन्तन - मनन करने के लिये।

आहार छोड़ने के 6 कारण - साधु 6 कारणों से आहार छोड़ते हैं -

गाथा- *आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बम्भचेर गुत्तीसु।*
पाणिदया तवहेउं, सरीर वोच्छेयणट्ठाए ।।

1. शूलादि रोग उत्पन्न होने पर।
2. देवता, मनुष्य, तिर्यंच संबंधी उपसर्ग उत्पन्न होने पर।
3. ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए।
4. प्राणियों की रक्षा के लिए।
5. तपस्या करने के लिये।
6. शरीर का त्याग करने के लिए।

4. आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति – भण्डोपकरण लेने और रखने में प्रतिलेखन और प्रमार्जन की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति करने को आदान भाण्ड-मात्र निक्षेपणा समिति कहते हैं। इसके चार भेद हैं-

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. द्रव्य से- उपधि देखकर व पूँजकर रखे तथा लेवे।

2. क्षेत्र से- सर्व क्षेत्र में।

3. काल से- जीवन पर्यन्त।

4. भाव से- उपयोग सहित। (राग -द्वेष रहित)

उपधि के दो भेद- 1. औघिक 2. औपग्रहिक।

1. **औघिक**- अर्थात् सामान्य उपधि जो हमेशा पास रखी जावे, जैसे- रजोहरण, वस्त्र, पात्र आदि गृहस्थ से लेवे एवं भोगे।
2. **औपग्रहिक**-प्रातिहारिक उपधि जो गृहस्थ से कारण से लेवे, भोगे एवं कार्य होने के बाद वापस लौटावे, जैसे-पाट, चौकी आदि

5. उच्चार प्रस्रवण खेल-जल्ल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति – स्थण्डिल के 10 दोषों को टालकर विधिपूर्वक परठने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को उच्चार - प्रस्रवण - खेल - जल्ल - सिंघाण परिष्ठापनिका समिति कहते हैं। इसके चार भेद हैं -

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. द्रव्य से-उच्चारादि परठने की वस्तु। (परठने की आठ वस्तु -1. उच्चार-मल 2. प्रस्रवण-मूत्र 3. खेल-बलगम (कफ) 4. सिंघाण- श्लेष्म-नाक का मैल 5. जल्ल-शरीर का मेल 6. आहार-पानी 7. उपधि-जीर्ण वस्त्रादि, पाटादि 8. देह व अन्य वस्तु-गोबर, राख, केशादि)

2. क्षेत्र से – योग्य प्रासुक क्षेत्र में परठे।

3. काल से – दिन को देखकर रात्रि में पूँजकर परठे।

4. भाव से – दस प्रकार की स्थंडिल भूमि में परठे।

दस प्रकार की स्थंडिल भूमि-

1. गृहस्थ आवे नहीं, देखे नहीं। आवे नहीं, देखे हैं। आवे हैं, देखे नहीं। आवे हैं, देखे हैं। इन चार भंगों में प्रथम भंग परठने हेतु उत्तम है।
2. आत्मा (शरीर-विराधना) जीव (छह काय-विराधना) तथा प्रवचन (शासन की निन्दा) का उपघात हो, ऐसे स्थान पर नहीं परठे।
3. समभूमि पर परठे।
4. पोलार रहित अथवा तृणादि के आच्छादन से रहित भूमि पर परठे।
5. थोड़े काल की अचित्त हुई भूमि पर परठे।
6. जघन्य एक हाथ चौरस भूमि पर परठे।
7. नीचे चार अंगुल अचित्त भूमि पर परठे।
8. ग्राम-नगर-उद्यानादि के अत्यन्त निकट न परठे।

9. चूहे के बिल आदि रहित भूमि पर परठे।

10. त्रस प्राणी तथा बीजादि रहित भूमि पर उपयोग सहित परठे।

गुप्ति का स्वरूप-

मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोककर आत्म-गुणों की सम्यक् प्रकार से रक्षा करने को 'गुप्ति' कहते हैं। गुप्ति तीन प्रकार की होती है- **मनो गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति।**

मनोगुप्ति-

मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना 'मनोगुप्ति' है। मनोगुप्ति चार प्रकार की होती हैः- **1. सत्या 2. मृषा 3. सत्यामृषा तथा 4. असत्यामृषा।**

संरंभ- दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार करना। जैसे- मैं ऐसा ध्यान करूँगा जिससे वह मर जाये।

समारंभ- दूसरों को हानि पहुँचाने का मानसिक प्रयत्न करना।

आरंभ- दूसरों को मन के तीव्र-अशुभ भावों से हानि पहुँचाना।

मनोगुप्ति के चार भेद - द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

द्रव्य से- चार प्रकार की मनोगुप्ति को संरंभ, समारंभ तथा आरंभ में बुरे अध्यवसाय रूप नहीं प्रवर्तावे।

क्षेत्र से- सर्व-क्षेत्र में।

काल से- जीवन-पर्यन्त।

भाव से- उपयोग-सहित।

वचन गुप्ति-

वचन की अशुभ (वचन बोलने रूप) प्रवृत्ति को रोकना 'वचन गुप्ति' है। वचन गुप्ति चार प्रकार की होती है - **1. सत्या 2.मृषा 3. सत्यामृषा और 4. असत्यामृषा।**

संरंभ- दूसरों को मारने में समर्थ ऐसे संकल्प को सूचित करने वाला शब्द बोलना।

समारंभ- दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला मन्त्रादि गुनना।

आरंभ- प्राणियों का अत्यन्त क्लेशपूर्वक नाश करने में समर्थ मन्त्रादि गुनना।

वचन गुप्ति के चार भेद- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

द्रव्य से- चार प्रकार की वचनगुप्ति को संरंभ, समारंभ तथा आरंभ में बुरे अध्यवसाय रूप नहीं प्रवर्तावे।

क्षेत्र से- सर्व-क्षेत्र में।

काल से- जीवन-पर्यन्त।

भाव से- उपयोग-सहित।

काय गुप्ति-

काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना 'काय गुप्ति' है। चलने, खड़े रहने, बैठने, सोने में तथा कारणवश ऊर्ध्वभूमिका, गड्ढे आदि के उलाँघने में और इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में प्रवृत्ति करता हुआ साधु काय गुप्ति करे।

1. **संरंभ-** यष्टि-मुष्टि आदि से ताड़ना करने के लिये तैयार होना।

2. **समारंभ**- दूसरों को परिताप (पीड़ा) करने हेतु लात वगैरह से प्रहार करना।

3. **आरंभ**- वध करने, जीवन रहित करने की क्रिया करना।

काय गुप्ति के चार भेद- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

1. **द्रव्य से**- काय गुप्ति को संरंभ, समारंभ तथा आरंभ में बुरे अध्यवसाय रूप नहीं प्रवर्तावे।

2. **क्षेत्र से**- सर्व-क्षेत्र में।

3. **काल से**- जीवन-पर्यन्त।

4. **भाव से**- उपयोग-सहित।

॥ पाँच समिति और तीन गुप्ति का थोकड़ा समाप्त॥

यद्यपि पाँच समिति-तीन गुप्ति का परिपालन साधु-साध्वियों के लिये है, तथापि अन्य साधक एवं गृहस्थ भी इनका पालन करके अपने जीवन को संवरमय एवं सुख-शान्तिमय बना सकते हैं।

ज्ञान–लब्धि का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 2 में ज्ञान-लब्धि का थोकड़ा चलता है जो इस प्रकार है-

द्वार गाथा-

जीव गई इंदिय काए, सुहुम पज्जत्तए भवत्थे य।
भवसिद्धिए य सण्णी, लद्धि उवओग जोगे य।।1।।
लेस्सा कसाय वेए आहारे, णाणगोयरे काले।
अंतर अप्पाबहुयं च, पज्जवा चेव दाराइं।।2।।

द्वार 21- 1. जीव, 2. गतिक, 3. इन्द्रिय, 4. काय, 5. सूक्ष्म-बादर, 6. पर्याप्त, 7. भवस्थ, 8. भवसिद्धिक, 9. संज्ञी, 10. लब्धि, 11. उपयोग, 12. योग, 13. लेश्या, 14. कषाय, 15. वेद, 16. आहार, 17. ज्ञान-गोचर, 18. काल, 19 अन्तर, 20. अल्पबहुत्व और 21 पर्याय की अल्पबहुत्व।

(1) **जीव द्वार-** समुच्चय जीव में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। पहली नरक, भवनपति, वाणव्यन्तर में 3 ज्ञान की नियमा, 3 अज्ञान की भजना*दूसरी नारकी से सातवीं नारकी तक, ज्योतिषी से नवग्रैवेयक तक 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की नियमा। पाँच अनुत्तर विमान में 3 ज्ञान की नियमा। पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में 2 अज्ञान की नियमा। तीन विकलेन्द्रिय, असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में 2 ज्ञान, 2 अज्ञान की नियमा। सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। मनुष्य में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। सिद्ध भगवान में केवल ज्ञान की नियमा।

(2) **गतिक (गतिया) द्वार-** वाटे चलते जीव को गतिक कहते हैं। मरण होने पर अर्थात् एक गति से दूसरी में जाने के बीच की अवस्था को गतिक कहते हैं। नरक गतिक व देवगतिक में 3 ज्ञान की नियमा, 3 अज्ञान की भजना। तिर्यंच गतिक में 2 ज्ञान, 2 अज्ञान की नियमा। मनुष्य गतिक में 3 ज्ञान की भजना, 2 अज्ञान की नियमा। सिद्ध गतिक में केवलज्ञान की नियमा।

(3) **इन्द्रिय द्वार-** सइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। एकेन्द्रिय में 2 अज्ञान की नियमा। तीन विकलेन्द्रिय में 2 ज्ञान 2 अज्ञान की नियमा। अनिन्द्रिय में केवलज्ञान की नियमा।

(4) **काय द्वार-** सकायिक और त्रसकायिक में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। पाँच स्थावर में 2 अज्ञान की नियमा। अकायिक में केवलज्ञान की नियमा।

(5) **सूक्ष्म-बादर द्वार-** सूक्ष्म में 2 अज्ञान की नियमा। बादर में 5 ज्ञान और 3 अज्ञान की भजना। नोसूक्ष्म-नोबादर में केवलज्ञान की नियमा।

*पहली नारकी, भवनपति तथा वाणव्यन्तर देवों में असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी जाते हैं। जब तक वे नारकी-देवता में अपर्याप्त रहते हैं, तब तक वे मति, श्रुत ये 2 अज्ञान वाले होते हैं। पर्याप्त होने पर विभंग ज्ञान होता है। जबकि सन्नी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव जब उक्त स्थानों में जाते हैं तो अज्ञान 3 ही होते हैं। अज्ञान में 2 व 3 दोनों विकल्प होने से इनमें 3 अज्ञान की भजना होती है।

(6) **पर्याप्त द्वार**- समुच्चय पर्याप्त और मनुष्य के पर्याप्त में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। पहली नारकी से नवग्रैवेयक के पर्याप्त में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की नियमा। पाँच अनुत्तर विमान के पर्याप्त में तीन ज्ञान की नियमा। पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त में 2 अज्ञान की नियमा। सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। समुच्चय अपर्याप्त में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। पहली नरक, भवनपति, वाणव्यन्तर के अपर्याप्त में 3 ज्ञान की नियमा, 3 अज्ञान की भजना। दूसरी नारकी से छठी नारकी, ज्योतिषी से नवग्रैवेयक तक के अपर्याप्त में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की नियमा। सातवीं नारकी के अपर्याप्त में 3 अज्ञान की नियमा। पाँच अनुत्तर विमान के अपर्याप्त में 3 ज्ञान की नियमा। पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त में 2 अज्ञान की नियमा। तीन विकलेन्द्रिय, असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त में 2 ज्ञान, 2 अज्ञान की नियमा। सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त में 3 ज्ञान की भजना, 2 अज्ञान की नियमा। नोपर्याप्त नो अपर्याप्त में केवल ज्ञान की नियमा।

(7) **भवत्थ (भवस्थ) द्वार**- नरकादि गतियों में रहे हुए वर्तमान जीव भवत्थ कहलाते हैं। नरक और देव भवत्था में 3 ज्ञान की नियमा, 3 अज्ञान की भजना। तिर्यंच के भवत्था में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। मनुष्य के भवत्था में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अभवत्था (सिद्धों) में केवलज्ञान की नियमा।

(8) **भवसिद्धिक द्वार**- भवसिद्धिया (भव्य) में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अभवसिद्धिया (अभव्य) में 3 अज्ञान की भजना। नोभवसिद्धिया नोअभवसिद्धिया (सिद्ध) में केवलज्ञान की नियमा।

(9) **संज्ञी द्वार**- सन्नी (संज्ञी) में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। असन्नी में 2 ज्ञान, 2 अज्ञान की नियमा। नोसन्नी नोअसन्नी में केवलज्ञान की नियमा।

(10) **लब्धि द्वार**- लब्धि के 10 भेद- 1. ज्ञान लब्धि, 2. दर्शन लब्धि, 3. चारित्र लब्धि, 4. चारित्राचारित्र लब्धि (देशविरति चारित्र), 5. दान लब्धि, 6. लाभ लब्धि, 7. भोग लब्धि, 8. उपभोग लब्धि, 9. वीर्य लब्धि, 10. इन्द्रिय लब्धि।

1. **ज्ञान लब्धि**- समुच्चय ज्ञान के लब्धिया में 5 ज्ञान की भजना, इनके अलब्धिया में 3 अज्ञान की भजना। मति-श्रुतज्ञान के लब्धिया में 4 ज्ञान की भजना, इनके अलब्धिया में 3 अज्ञान की भजना, केवलज्ञान की नियमा। अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञान के लब्धिया में 4 ज्ञान की भजना, इनके अलब्धिया में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। केवलज्ञान के लब्धिया में केवलज्ञान की नियमा, इसके अलब्धिया में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। समुच्चय अज्ञान और मति, श्रुत अज्ञान के लब्धिया में 3 अज्ञान की भजना इनके अलब्धिया में 5 ज्ञान की भजना। विभंगज्ञान के लब्धिया में 3 अज्ञान की नियमा, उसके अलब्धिया में 5 ज्ञान की भजना, 2 अज्ञान की नियमा।

2. **दर्शन लब्धि**- समुच्चय दर्शन में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना, इसके अलब्धिया में कोई जीव नहीं। सम्यग्दर्शन के लब्धिया में 5 ज्ञान की भजना, इसके अलब्धिया में 3 अज्ञान की भजना। मिथ्या दर्शन और मिश्र दर्शन के लब्धिया में 3 अज्ञान की भजना, इन दोनों के अलब्धिया में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना।

3. **चारित्र लब्धि**- समुच्चय चारित्र में 5 ज्ञान की भजना, इसके अलब्धिया में 4 ज्ञान (मनः पर्यवज्ञान के अलावा) 3 अज्ञान की भजना। सामायिक आदि चार चारित्र में 4 ज्ञान की भजना, इनके अलब्धिया में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। यथाख्यात चारित्र के लब्धिया में 5 ज्ञान की भजना,

इसके अलब्धिया में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना।

4. **चारित्राचारित्र लब्धि-** चारित्राचारित्र के लब्धिया में 3 ज्ञान की भजना, इसके अलब्धिया में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना।

5. **दान, 6. लाभ, 7. भोग, 8. उपयोग, 9. वीर्य लब्धि-** इन सबके लब्धिया में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना, इनके अलब्धिया में केवलज्ञान की नियमा। बाल वीर्य के लब्धिया में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। इसके अलब्धिया में 5 ज्ञान की भजना। बालपण्डित वीर्य के लब्धिया में 3 ज्ञान की भजना। इसके अलब्धिया में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। पण्डित वीर्य के लब्धिया में 5 ज्ञान की भजना। इसके अलब्धिया में 4 ज्ञान (मनःपर्यवज्ञान के सिवाय) की और 3 अज्ञान की भजना।

10. **इन्द्रिय लब्धि-** सइन्द्रिय व स्पर्शनेन्द्रिय के लब्धिया में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। इनके अलब्धिया में केवलज्ञान की नियमा (समुच्चय इन्द्रिय का अलब्धिया और स्पर्शनेन्द्रिय के अलब्धिया में केवलज्ञान की नियमा)। रसनेन्द्रिय के लब्धिया में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना, इसके अलब्धिया में 2 अज्ञान और केवलज्ञान की नियमा। श्रोत्रेद्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय के लब्धिया में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना, इनके अलब्धिया में 2 ज्ञान, 2 अज्ञान व केवलज्ञान की नियमा।

11. **उपयोग द्वार-** साकारोपयोग अनाकारोपयोग में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अवधिदर्शन में चार ज्ञान की भजना, 3 अज्ञान की नियमा। केवलदर्शन में केवलज्ञान की नियमा।

12. **योग द्वार-** सयोगी, मन योगी, वचन योगी और काय योगी में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अयोगी में केवल ज्ञान की नियमा।

13. **लेश्या द्वार-** सलेशी और शुक्ललेशी में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। कृष्ण, नील, कापोत, तेजो और पद्मलेशी में चार ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अलेशी में केवलज्ञान की नियमा।

14. **कषाय द्वार-** सकषायी, क्रोध, मान, माया और लोभ कषायी में चार ज्ञान, तीन अज्ञान की भजना। अकषायी में 5 ज्ञान की भजना।

15. **वेद द्वार-** सवेदी, पुरुष वेदी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अवेदी में 5 ज्ञान की भजना।

16. **आहार द्वार-** आहारक में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अनाहारक में 4 ज्ञान (मनः पर्यवज्ञान छोड़कर), 3 अज्ञान की भजना।

17. **ज्ञान-गोचर द्वार-** प्रत्येक ज्ञान व अज्ञान का विषय चार प्रकार से है- द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव। (1) मतिज्ञान के 2 भेद-1. श्रुतनिश्रित, 2. अश्रुत निश्रित। मतिज्ञानी-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा सामान्य रूप से सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानता व देखता है। (2) श्रुतज्ञान के 14 भेद- 1. अक्षर श्रुत, 2. अनक्षर श्रुत, 3. संज्ञी श्रुत, 4. असंज्ञी श्रुत, 5. सम्यक् श्रुत, 6. मिथ्या श्रुत, 7. सादि श्रुत, 8. अनादि श्रुत, 9. सपर्यवसित श्रुत, 10. अपर्यवसित श्रुत, 11. गमिक श्रुत, 12. अगमिक श्रुत, 13. अंगप्रविष्ट श्रुत, 14. अंग बाह्य श्रुत। श्रुतज्ञानी उपयोग पूर्वक सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानता, देखता, प्ररूपता है। (3) अवधिज्ञान के 6 भेद- 1. अनुगामी, 2. अननुगामी, 3. वर्द्धमान, 4. हीयमान, 5. प्रतिपाती, 6. अप्रतिपाती। अवधिज्ञानी द्रव्य से- जघन्य अनन्त रूपी

द्रव्य उत्कृष्ट सर्व रूपी द्रव्य जानता है, देखता है। क्षेत्र से- जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट सर्वलोक और सर्वलोक सरीखा असंख्यात खंड अलोक में हों तो उनको भी जानने-देखने की शक्ति है।* काल से-जघन्य आवलिका का असंख्यातवाँ भाग उत्कृष्ट असंख्याती अवसर्पिणी, असंख्याती उत्सर्पिणी जितना भूत भविष्यत् काल जानता, देखता है। भाव से-जघन्य अनन्त भावों को जानता, देखता है उत्कृष्ट सर्वभावों के अनन्तवें भाग को जानता देखता है। 4. मनःपर्यवज्ञान के दो भेद, 1. ऋजुमति, 2. विपुलमति। ऋजुमति द्रव्य से- अनन्त-अनन्त प्रदेशी स्कंध को जानता, देखता है। क्षेत्र से-जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट नीचे रत्नप्रभा नरक के उपरिम अधस्तन (ऊपरी प्रतर से नीचे के) क्षुल्लक प्रतरों को, ऊँचा ज्योतिषी के ऊपर के तल को तथा तिरछी दिशा में अढ़ाई अंगुल कम अढ़ाई द्वीप के सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मन के भावों को जानता, देखता है। काल से- जघन्य उत्कृष्ट पल के असंख्यातवें भाग जितना भूत, भविष्यत् काल जानता, देखता है। भाव से-अनन्त भावों को और सब भावों के अनन्तवें भाग को जानता देखता है। विपुलमति भी इसी तरह है, परन्तु क्षेत्र से ऋजुमति की अपेक्षा प्रत्येक दिशा में अढ़ाई अढ़ाई-अंगुल क्षेत्र अधिक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को कुछ अधिक विस्तार सहित विशुद्ध व स्पष्ट जानता, देखता है। 5. केवलज्ञान के दो भेद- (1) भवस्थ केवलज्ञान, (2) सिद्ध केवलज्ञान। केवलज्ञानी सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को प्रत्यक्ष जानता, देखता है। 6. मति अज्ञानी-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ग्रहण किए हुए पुद्गलों को जानता, देखता है। 7. श्रुत अज्ञानी-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ग्रहण किए हुए पुद्गलों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपणा करता है। 8. विभंगज्ञानी-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ग्रहण किए हुए पुद्गलों को जानता, देखता है।

18. **काल द्वार**- ज्ञान की स्थिति को काल कहते हैं। समुच्चय ज्ञानी में भंग पावे दो- 1. साइया अपज्जवसिया, 2. साइया सपज्जवसिया। दूसरे भंग की और मति, श्रुत ज्ञान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, अवधिज्ञान की जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीनों की 66 सागर झाझेरी। मनःपर्यवज्ञान की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़पूर्व की। केवलज्ञान में भंग पावे एक-साइया अपज्जवसिया। समुच्चय अज्ञान और मतिश्रुत अज्ञान में भंग पावे तीन- 1. अणाइया अपज्जवसिया, 2. अणाइया सपज्जवसिया, 3. साइया सपज्जवसिया। तीसरे भंग में मति-श्रुत अज्ञान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल। विभंगज्ञान की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट 33 सागर तथा देशोन करोड़पूर्व।

19. **अन्तर द्वार**- समुच्चय ज्ञान का दूसरा भंग, मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यवज्ञान का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन। समुच्चय अज्ञानी, मति, श्रुत अज्ञानी के तीसरे भंग का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट 66 सागर झाझेरी। विभंगज्ञान का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पति काल) समुच्चय ज्ञान का पहला भंग, समुच्चय अज्ञान का पहला व दूसरा भंग और केवलज्ञान का अन्तर नहीं।

*अवधि ज्ञानी का विषय रूपी द्रव्य है, अलोक में कोई रूपी द्रव्य नहीं है, अतः अलोक में अवधिज्ञानी का विषय नहीं होने से नहीं जानता, नहीं देखता है, लेकिन लोक से असंख्यात गुणा क्षेत्र जानने-देखने की शक्ति रखता है। जैसे-जैसे शक्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे अवधिज्ञान विशुद्ध-विशुद्धतर होता जाता है।

20. **अल्पबहुत्व द्वार**- ज्ञान-सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञानी, उससे अवधिज्ञानी असंख्यात गुणा, उससे मति, श्रुत ज्ञानी परस्पर तुल्य किन्तु अवधिज्ञानी से विशेषाधिक, उससे केवलज्ञानी अनन्तगुणा। उससे समुच्चय ज्ञानी विशेषाधिक। अज्ञान- सबसे थोड़ा विभंगज्ञानी, उससे मति, श्रुत अज्ञानी परस्पर तुल्य किन्तु विभंगज्ञानी से अनन्तगुणा। ज्ञान व अज्ञान की शामिल-सबसे थोड़ मनःपर्यवज्ञानी, उससे अवधिज्ञानी असंख्यात गुणा, उससे मति श्रुत ज्ञानी परस्पर तुल्य विशेषाधिक, उससे विभंगज्ञानी असंख्यातगुणा, उससे केवलज्ञानी अनन्तगुणा। उससे समुच्चय ज्ञानी विशेषाधिक। उससे मति, श्रुत अज्ञानी परस्पर तुल्य अनन्तगुणा।

21. **पर्याय की अल्पबहुत्व द्वार**- एक-एक ज्ञान की पर्याय अनन्त अनन्त।

ज्ञान के पर्याय की अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े मनः पर्यवज्ञान के पर्याय, उससे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे मतिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा।

अज्ञान के पर्याय की अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े विभंगज्ञान के पर्याय, उससे श्रुत अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे मति अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा।

ज्ञान और अज्ञान के पर्याय, दोनों की शामिल अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञान के पर्याय, उससे विभंगज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे श्रुत अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक। उससे मति अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा, उससे मतिज्ञान के पर्याय विशेषाधिक, उससे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा।

।।ज्ञान-लब्धि का थोकड़ा समाप्त।।

32 बोल का बासठिया

1. समुच्चय जीव में

		जीव के भेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	समुच्चय जीव में	14	14	15	12	6
2.	समुच्चय अपर्याप्त में	7	3	5	9	6
3.	समुच्चय पर्याप्त में	7	14	15	12	6
4.	समुच्चय अपर्याप्त अनाहारक में	7	3	1	8	6
5.	समुच्चय अपर्याप्त आहारक में	7	3	4	9	6
6.	समुच्चय पर्याप्त अनाहारक में	1	2	1	2	1
7.	समुच्चय पर्याप्त आहारक में	7	13	14	12	6

2. नारकी में

1.	नारकी में	3	4	11	9	3
2.	नारकी अपर्याप्त में[1]	2	2	3	9	3
3.	नारकी पर्याप्त में	1	4	10	9	3
4.	नारकी अपर्याप्त अनाहारक में	2	2	1	8	3
5.	नारकी अपर्याप्त आहारक में	2	2	2	9	3
6.	नारकी पर्याप्त आहारक में	1	4	10	9	3

3. तिर्यञ्च में

1.	तिर्यञ्च में	14	5	13	9	6
2.	तिर्यञ्च अपर्याप्त में	7	3	3	6	6
3.	तिर्यञ्च पर्याप्त में	7	5	12	9	6
4.	तिर्यञ्च अपर्याप्त अनाहारक में	7	3	1	5	6
5.	तिर्यञ्च अपर्याप्त आहारक में	7	3	2	6	6
6.	तिर्यञ्च पर्याप्त आहारक में	7	5	12	9	6

4. मनुष्य में

1.	मनुष्य में	3	14	15	12	6
2.	मनुष्य अपर्याप्त में	2	3	3	8	6
3.	मनुष्य पर्याप्त में	1	14	15	12	6
4.	मनुष्य अपर्याप्त अनाहारक में	2	3	1	7	6
5.	मनुष्य अपर्याप्त आहारक में	2	3	2	8	6
6.	मनुष्य पर्याप्त अनाहारक में	1	2	1	2	1
7.	मनुष्य पर्याप्त आहारक में	1	13	14	12	6

1. कर्मग्रन्थ भाग 2 गाथा 14 के विवेचन में व गोम्मटमार कर्मकाण्ड गाथा 262 में नारकी के अपर्याप्त में सास्वादन समकित नहीं मानी है।

5. देव में

		जीव के भेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	देव में	3	4	11	9	6
2.	देव अपर्याप्त में	2	3	3	9	6
3.	देव पर्याप्त में	1	4	10	9	6
4.	देव अपर्याप्त अनाहारक में	2	3	1	8	6
5.	देव अपर्याप्त आहारक में	2	3	2	9	6
6.	देव पर्याप्त आहारक में	1	4	10	9	6

32 बोल का बासठिया सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्य

1. बाटा बहती अवस्था में तथा अपर्याप्त अवस्था में सभी संसारी जीवों में पहला, दूसरा व चौथा ये तीन गुणस्थान मिलते हैं।
2. अपर्याप्त अवस्था में नारकी, देवता में वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र और कार्मण, ये तीन योग तथा मनुष्य-तिर्यंच में औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण, ये तीन योग मिलते हैं। समुच्चय अपर्याप्त में औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र और कार्मण, ये पाँच योग मिलते हैं।
3. अपान्तराल गति में (विग्रह गति में) तथा अनाहारक अवस्था में एक मात्र कार्मण काय योग मिलता है। किन्तु अयोगी केवली अनाहारक में कोई भी योग नहीं मिलता।
4. नारकी के अपर्याप्त में सास्वादन समकित नहीं होती, क्योंकि सास्वादन गुणस्थान में नरकानुपूर्वी का उदय नहीं होता। बिना नरकानुपूर्वी के उदय के कोई जीव नरक गति में नहीं जाता। अतः नरक गति के अपर्याप्त जीवों में पहला व चौथा ये दो गुणस्थान ही माने जाते हैं।
5. ऐसे जीव जो आहारक हैं, किन्तु अपर्याप्त हैं, उनमें नारकी देवता में वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र ये दो योग तथा मनुष्य-तिर्यंचों में औदारिक, औदारिक मिश्र ये दो योग पाये जाते हैं।
6. मनुष्य, तिर्यंच व देव गति में छहों लेश्या मिलती हैं। नारकी जीवों में प्रथम तीन लेश्या ही मिलती हैं। मनुष्य गति में यह विशेषता है कि पहले से छठे गुणस्थान तक छहों लेश्या, सातवें में तीन शुभ लेश्या तथा आठवें से तेरहवें गुणस्थान तक एक शुक्ल लेश्या मिलती हैं। चौदहवाँ गुणस्थान अलेशी है।
7. नरक गति, देव गति तथा मनुष्य गति के जीवों में जीव के भेद-सन्नी का अपर्याप्त, पर्याप्त तथा असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त, ये तीन भेद पाये जाते हैं। तिर्यंच गति में तो जीव के सभी चौदह भेद मिलते हैं।
8. देवियों में जीव के भेद 2 ही होते हैं। लेश्या 4 होगी तथा शेष (गुणस्थान, योग, उपयोग) देवता के बोल के समान समझना।
9. तिर्यंचिंणी में जीव के भेद दो होते हैं। शेष बोल (गुणस्थान, योग, उपयोग, लेश्या) तिर्यंच के समान समझना।
10. अपर्याप्त व अनाहारक दोनों अवस्था जिसमें मिले, वह बाटा बहता जीव है।
11. मनुष्य और तिर्यंच में अपर्याप्त अवस्था में विभंग ज्ञान नहीं होता है।
12. तिर्यंच के अपर्याप्त में अवधि ज्ञान नहीं होता है।
13. कार्मण काय योग अपर्याप्त अवस्था में ही होता है। कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य में केवली समुद्घात के समय कार्मण काययोग होता है, इस अपेक्षा से सन्नी का पर्याप्त भेद भी लिया है।

पाँच देवों का थोकड़ा

(बारहवें शतक का नववाँ उद्देशक)

श्री भगवती सूत्र के 12 वें शतक के नवमें उद्देशक में पाँच देवों का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

1. नाम द्वार, 2. अर्थ द्वार, 3. आगति द्वार, 4. गति द्वार, 5. स्थिति द्वार, 6. वैक्रिय द्वार, 7. संचिट्ठणकाल द्वार, 8. अवगाहना द्वार, 9. अन्तर द्वार, 10. अल्प बहुत्व (अल्पबहुत्व) द्वार।

1. नाम द्वार- अहो भगवन्! देव कितने प्रकार के हैं?

हे गौतम! देव पाँच प्रकार के हैं- 1. भव्य द्रव्य देव, 2. नरदेव, 3. धर्म देव, 4. देवाधिदेव, 5. भाव देव।

2. अर्थ द्वार- अहो भगवन्! भव्य द्रव्य देव किसको कहते हैं?

हे गौतम! जो जीव अभी मनुष्यगति में अथवा तिर्यंचगति में हैं और भविष्य में (अगले भव में) देवगति में उत्पन्न होने वाले हैं उनको भव्य द्रव्य देव कहते हैं।

अहो भगवन्! नरदेव किसको कहते हैं?

हे गौतम! जो राजा चारों दिशाओं में छह खण्ड के स्वामी हैं, चक्रवर्ती हैं, जिनके पास 84 लाख हाथी, 84 लाख घोड़े, 84 लाख रथ, 96 करोड़ पैदल, 64 हजार रानियाँ हैं। जो 9 निधि और 14 रत्नों के स्वामी, 6 खण्ड के भोक्ता हैं। 32 हजार मुकुट-बन्ध राजा जिनकी आज्ञा में चलते हैं, उनको नरदेव कहते हैं।

अहो भगवन्! धर्म देव किसे कहते हैं?

हे गौतम! जो अनगार* 27 गुणों को धारण करते हैं, उनको धर्मदेव कहते हैं।

अहो भगवन्! देवाधिदेव किसको कहते हैं?

हे गौतम! 34 अतिशय, 35 वाणी के गुणों से युक्त, उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् को देवाधिदेव कहते हैं।

अहो भगवन्! भावदेव किसे कहते हैं?

हे गौतम! जिन जीवों के देव गति नाम कर्म एवं देवायु का उदय हो, वे भावदेव कहलाते हैं। भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक, ये चार जाति के देव 'भावदेव' होते हैं।

3. आगति द्वार- भव्य द्रव्य देव की आगति 284 की- 179 की लड़ी (अर्थात् 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य, 48 तिर्यंच, 15 कर्म भूमि के अपर्याप्त व पर्याप्त, ये 179 की लड़ी), 7 नारकी, सर्वार्थसिद्ध विमान को छोड़कर 98 जाति के देवता के, ये सब 284।

* साधुजी के 27 गुण-5 महाव्रत पालें, 5 इन्द्रियाँ जीतें, 4 कषाय टालें, भाव सच्चे, करण सच्चे, जोग सच्चे, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, मन समाधारणया, वचन समाधारणया, काय समाधारणया, शीतादि परीषहों को सहन करने वाले, मारणान्तिक उपसर्ग सहन करने वाले।

(समवायांग सूत्र का 27 वाँ समवाय)

नरदेव की आगति 82 की (1 पहली नारकी, 10 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिषी, 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान, ये सब 82)।

धर्मदेव की आगति 275 की (171 की लड़ी, 179 की लड़ी में तेउकाय, वायुकाय के 8 कम करके, 99 जाति के देव, 5 नारकी के, ये 275)।

देवाधिदेव की आगति 38 की (12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान * 3 नारकी, ये 38)।

भाव देव की आगति 111 की (101 सन्नी मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, ये 111 इन सभी के पर्याप्त)।

4. गति द्वार- भव्य द्रव्य देव की गति 198 की (99 जाति के देव के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये 198) नरदेव की गति 14 की (* 7 नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त 14)। धर्मदेव की गति 70 की (12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान, इन 35 के पर्याप्त और अपर्याप्त ये 70)। अथवा मोक्ष। देवाधिदेव की गति-मोक्ष की। भावदेव की गति 46 की (15 कर्मभूमि, 5 सन्नी तिर्यंच, बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पति, इन 23 के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये 46 हुए)।

5. स्थिति द्वार - भव्य द्रव्य देव की स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की नरदेव की स्थिति जघन्य 700 वर्ष और उत्कृष्ट 84 लाख पूर्व की। धर्मदेव की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त * की उत्कृष्ट देशऊणी करोड़ पूर्व की *। देवाधिदेव की स्थिति जघन्य 72 वर्ष की, उत्कृष्ट 84 लाख पूर्व की। भाव देव की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की है।

6. वैक्रिय द्वार- भव्य-द्रव्य देव और धर्मदेव के लब्धि हो, तो वैक्रिय करे जघन्य 1–2–3 उत्कृष्ट संख्याता, (असंख्याता करने की शक्ति भी हो सकती है, किन्तु असंख्याता करते नहीं)। नरदेव और भावदेव वैक्रिय करें, तो जघन्य 1–2–3 उत्कृष्ट संख्याता। (असंख्याता करने की शक्ति है, किन्तु असंख्याता करते नहीं) देवाधिदेव में वैक्रिय करने की शक्ति तो है, किन्तु वे वैक्रिय करते नहीं।

7. संचिट्ठणकाल द्वार- जिस तरह स्थिति कही उसी तरह संचिट्ठणा काल कह देना चाहिए परन्तु इतनी विशेषता है कि धर्मदेव का जघन्य संचिट्ठण काल* एक समय का कहना चाहिए।

*** पहले की तीन यानी पहली, दूसरी, तीसरी नारकी से निकले हुए जीव तीर्थंकर हो सकते हैं किन्तु नीचे के चार नरकों से निकले हुए जीव तीर्थंकर नहीं हो सकते हैं।**

*** यद्यपि कोई कोई नरदेव (चक्रवर्ती देवों में भी उत्पन्न होते हैं तथा मोक्ष भी जाते हैं किन्तु वे नरदेवपना छोड़कर धर्म देवपना) (साधुपना) अंगीकार करें तो देवों में उत्पन्न होते हैं तथा मोक्ष भी जाते हैं। काम भोगों का त्याग किये बिना नरदेव (चक्रवर्ती) अवस्था में ही काल कर जाय तो वे सातों में से किसी भी एक नरक में उत्पन्न होते हैं।**

*** अन्तर्मुहूर्त्त की आयुष्य वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय देवताओं में उत्पन्न हो सकता है, इसलिए भव्य द्रव्य देव की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है। तीन पल्योपम की आयुष्य वाला देवकुरु उत्तरकुरु का युगलिया मनुष्य और स्थलचर युगलिक तिर्यंच, देवताओं में उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिए उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।**

*** कोई मनुष्य अंतर्मुहूर्त्त आयुष्य बाकी रहे तब चारित्र (संयम) अंगीकार करें इसकी अपेक्षा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त कही गई है। * कोई मनुष्य कुछ कम करोड़ पूर्व वर्ष तक चारित्र पालन करें इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति ऊणी (कुछ कम) करोड़ पूर्व वर्ष कही गई है।**

*** कोई धर्म देव अशुभ भाव को प्राप्त करके फिर पीछा एक समय मात्र शुभ भाव को प्राप्त कर तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए धर्मदेव का जघन्य संचिट्ठणकाल परिणामों की अपेक्षा से एक समय का कहा गया है।**

8. अवगाहना* द्वार- भव्य द्रव्य देव की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट एक हजार योजन की। नरदेव की अवगाहना जघन्य 7 धनुष की, उत्कृष्ट 500 धनुष की। धर्म देव की अवगाहना जघन्य दो हाथ की उत्कृष्ट 500 धनुष की। देवाधिदेव की अवगाहना जघन्य 7 हाथ की, उत्कृष्ट 500 धनुष की। भाव देव की अवगाहना जघन्य एक हाथ की, उत्कृष्ट 7 हाथ की है।

9. अन्तर द्वार- भव्य द्रव्य देव का अन्तर (आन्तरा) जघन्य* 10 हजार वर्ष अन्तर्मुहूर्त्त अधिक का उत्कृष्ट अनंत काल का है।

नरदेव का अन्तर* जघन्य 1 सागरोपम झाझेरा (कुछ अधिक) उत्कृष्ट देश उणा (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन का है। धर्मदेव का अन्तर जघन्य पल्योपम पृथक्त्व का उत्कृष्ट देश ऊणा अर्द्ध पुद्गल परावर्तन का है। देवाधिदेव का अन्तर नहीं*। भावदेव का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का, उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

10. अल्पबहुत्व द्वार- सबसे थोड़े नरदेव, उससे देवाधिदेव संख्यात गुणे, उससे धर्मदेव संख्यात गुणे, उससे भव्य द्रव्यदेव असंख्यात गुणे, उससे भावदेव असंख्यात गुणे हैं।

सेवं भंते! सेवं भंते!!

जिसने देव का आयुष्य बांध लिया है उसको यहाँ भव्य द्रव्य देव तरीके समझना चाहिए। इससे दस हजार वर्ष की स्थिति वाला देव, देवलोक से च्यव कर भव्य द्रव्य देव (तिर्यंच पंचेन्द्रिय) पने उत्पन्न होता है और अन्तर्मुहूर्त्त के बाद आयुष्य का बंध करता है। इसलिए अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का अंतर होता है।

अपर्याप्त जीव देवगति में उत्पन्न नहीं हो सकता है अतः पर्याप्त होने के बाद ही उसे भव्य द्रव्य देव गिनना चाहिये। इस प्रकार गिनने से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का होता है। भगवती सूत्र के चौबीसवें शतक (गमा शतक) में जघन्य स्थिति वाले देवों का तिर्यंच पंचेन्द्रिय में भव्य द्रव्य देवपने उत्पन्न होना बताया है। इसलिए यहाँ बद्धायु को ही भव्य द्रव्य देव बताया है।

भव्य द्रव्य देव मर कर देव होता है और वहाँ से च्यव कर वनस्पति आदि में अनंतकाल तक रह कर फिर भव्य द्रव्य देव होता है। इस अपेक्षा से अनंतकाल का अंतर होता है।

* कोई नरदेव (चक्रवर्ती) काम भोगों में आसक्त होकर यहाँ से मर कर पहली नरक में उत्पन्न हो। वहाँ एक सागरोपम की आयुष्य भोग कर वापिस नरदेव (चक्रवर्ती) हो और जब तक चक्ररत्न उत्पन्न न हो तब तक जघन्य एक सागर झाझेरा (कुछ अधिक) अंतर होता है।

कोई सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्तीपना प्राप्त करे। फिर वह कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल तक संसार में परिभ्रमण करें। फिर सम्यक्त्व प्राप्त कर चक्रवर्तीपना प्राप्त करें और मोक्ष जाए। इस अपेक्षा से नरदेव का उत्कृष्ट अंतर देश ऊणा (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल होता है।

* देवाधिदेव (तीर्थंकर भगवान्) उसी भव में मोक्ष में जाते हैं, इसलिए इनका अंतर नहीं होता है।

---

* अवगाहना का विवेचन अन्य स्थान से ग्रहण किया है।

छोटी गतागत

श्री पन्नवणा सूत्र के छठे पद में छोटी गतागत का वर्णन है। छोटी गतागत में जीव के 563 भेद के स्थान पर 110 भेद एवं मोक्ष, इस तरह कुल 111 भेदों की अपेक्षा से विवेचन किया है, जो इस प्रकार है।

नारकी के 7 भेद- सात नारकी के पर्याप्त।

तिर्यंच के 46 भेद- तिर्यंच के 48 भेद में से वनस्पति के छह के स्थान पर चार भेद ही किये हैं-सूक्ष्म एवं बादर वनस्पति के अपर्याप्त और पर्याप्त।

मनुष्य के 3 भेद- संख्यात वर्षों की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त और पर्याप्त तथा समूर्च्छिम मनुष्य, ये अपर्याप्त ही होते हैं।

युगलिये के 5 भेद- 1 असंख्यात वर्षों की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्य, 2. अकर्मभूमिज मनुष्य, 3. छप्पन अंतरद्वीप के मनुष्य, 4. खेचर तिर्यंच युगलिया और 5. थलचर तिर्यंच युगलिया के पर्याप्त।

देव के 49 भेद- 10 भवनपति (पन्द्रह परमाधार्मिक का समावेश इनमें हो गया है) 8 वाणव्यंतर- पहले से आठवें तक (व्यंतर एवं जृंभक सभी का समावेश इसमें हो गया है) 5 ज्योतिषी, 12 वैमानिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान, इन 49 के पर्याप्त।

संसारी जीवों के ये कुल 110 भेद (7+46+3+5+49) हुए।

प्रश्न- अहो भगवन्! पहली नारकी के नेरिये कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं और नरक से निकल कर कहाँ जाते हैं?

उत्तर- हे गौतम! पहली नरक के नेरिये की आगति 11 की। यथा-5 सन्नी तिर्यंच, 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और एक संख्यात वर्षों का कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त। गति 6 की-पांच सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और एक संख्यात वर्षों का कर्मभूमिज मनुष्य का पर्याप्त*।

दूसरी नरक में आगति 6 की-5 सन्नी तिर्यंच और 1 संख्यात वर्षों का कर्मभूमिज मनुष्य का पर्याप्त। गति 6 की पूर्ववत्।

तीसरी नरक की आगति 5 की-जलचर, थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और संख्यात वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य का पर्याप्त। गति 6 की।

चौथी नरक की आगति 4 की-जलचर, थलचर, उरपरिसर्प और संख्यात वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य का पर्याप्त। गति 6 की।

पाँचवीं नारकी की आगति 3 की-जलचर, उरपरिसर्प और संख्यात वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य का पर्याप्त। गति 6 की।

छठी नारकी की आगति 2 की जलचर और कर्मभूमिज संख्यात वर्ष के मनुष्य, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी के पर्याप्त। गति 6 की।

---

* इस थोकड़े में गति के वर्णन में पर्याप्त के ही भेद लिये हैं इसका आशय यह समझना चाहिये कि उन स्थानों पर उत्पन्न होते समय तो अपर्याप्त उत्पन्न होंगे परन्तु पर्याप्त हुए बिना काल नहीं करेंगे।

सातवीं नारकी की आगति 2 की-जलचर और कर्मभूमिज संख्यात वर्ष के मनुष्य, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी के पर्याप्त। गति 5 की-सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त की।

भवनपति और वाणव्यंतर में 16 की आगति-5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, 5 सन्नी तिर्यंच, संख्यात व असंख्यात वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य, अकर्मभूमिज मनुष्य, अंतरद्वीप के मनुष्य, थलचर व खेचर युगलिये, इन सबका पर्याप्त। गति 9 की-5 सन्नी तिर्यंच, बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पति, संख्यात वर्षों की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्य का पर्याप्त।

ज्योतिषी में और पहले व दूसरे देवलोक में 9 की आगति-5 सन्नी तिर्यंच, संख्यात व असंख्यात वर्षों की आयु वाले कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज मनुष्य और थलचर युगलिये का पर्याप्त। गति 9 की भवनपति के अनुसार।

तीसरे देवलोक से लगाकर आठवें देवलोक तक के देवों की 6 की आगति और 6 की ही गति-5 सन्नी तिर्यंच और संख्यात वर्षों की आयु के कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त।

नौवें देवलोक से लगाकर 12 वें देवलोक तक आगति 4 की-साधु श्रावक, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। गति 1 की संख्यात वर्ष के कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त की।

नवग्रैवेयक में आगति 2 की-स्वलिंगी सम्यग्दृष्टि साधु और स्वलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु। गति 1 की नौवें देवलोक के अनुसार।

पाँच अनुत्तर विमान में आगति 2 की-1 ऋद्धि प्राप्त अप्रमादी अनगार और 2 अऋद्धि प्राप्त अप्रमादी अनगार। गति 1—की नौवें देवलोक के अनुसार।

ज्ञातव्य- नौवें देवलोक से लेकर अनुत्तर विमान तक के देवलोकों में यद्यपि कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त ही आते हैं। फिर भी उस मनुष्य की विशेष अवस्थाओं को बतलाने के लिए मनुष्य के भी भेद कर दिये हैं। जैसे साधु, श्रावक, अविरति सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। इसी कारण से 9 से 12 देवलोक तक की आगति में मनुष्य के उक्त 4 भेद लिये गये हैं।

नवग्रैवेयक में जैन साधु ही जाते हैं, इसलिए द्रव्य और भाव से स्वलिंगी सम्यग्दृष्टि साधु तथा द्रव्य से स्वलिंगी मिथ्या दृष्टि साधु ये दो भेद नवग्रैवेयक की आगति में बतलाये हैं।

पांच अनुत्तर विमान में यद्यपि स्वलिंगी सम्यग्दृष्टि साधु ही आते हैं फिर भी वे अप्रमादी होने आवश्यक है। अप्रमादी साधु में भी ऋद्धि प्राप्त (विशेष लब्धि के धारक) तथा अऋद्धि प्राप्त दोनों तरह के साधु पांच अनुत्तर विमान में आने के कारण ये दो भेद आगति में लिये गये हैं।

पृथ्वी, पानी और वनस्पति की आगति 74* की-49 की लड़ी (46 तिर्यंच के और 3 संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त, अपर्याप्त व सम्मूर्च्छिम) तथा 25 देवता के पर्याप्त (10 भवनपति, 8 वाणव्यंतर, 5 ज्योतिषी और पहला दूसरा देवलोक)। गति-49 की लड़ी।

तेउकाय और वायुकाय की आगति 49 की लड़ी की और गति 46 तिर्यंच की।

तीन विकलेन्द्रिय की आगति और गति 49 की लड़ी।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति 87 की-49 की लड़ी, 31 देवता के (भवनपति से 8 वें देवलोक तक) और 7 नारकी के पर्याप्त। गति 92 की-87 ऊपर बताये अनुसार व असंख्यात वर्ष के कर्मभूमिज मनुष्य, अकर्मभूमिज मनुष्य, अन्तरद्वीप के मनुष्य, थलचर और खेचर युगलिये।

मनुष्य की आगति 96 की-49 की लड़ी में से तेउ-वायु के 8 निकाल कर शेष 41 और 49 देव और 6

नारकी (सातवीं नारकी छोड़कर) के पर्याप्त। गति 111 की-96 आगति में बताये अनुसार, 8 तेउ-वायु के, सातवीं नारक, असंख्यात वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य, अकर्मभूमिज मनुष्य, अन्तरद्वीप के मनुष्य और थलचर, खेचर युगलिये तथा मोक्ष। (96+15=111)

सेवं भंते। सेवं भंते।।

---

* पृथ्वी, पानी और वनस्पति में 74 की आगति बादर की अपेक्षा से हैं। सूक्ष्म पृथ्वी, पानी और वनस्पति की आगति तो 49 की ही है।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : चतुर्थ – जैनागम स्तोक वारिधि (परीक्षा 07 जनवरी, 2018)

समय : 3 घण्टे अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1=(10)

(a) मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को कहते हैं-

(क) समिति (ख) गुप्ति

(ग) भाषा समिति (घ) मन गुप्ति (क)

(b) सूक्ष्म पृथ्वीकाय की आगति है-

(क) 74 (ख) 49

(ग) 243 (घ) 179 (ख)

(c) श्री पन्नवण सूत्र पद-6 में वर्णन है -

(क) समिति गुप्ति (ख) ज्ञान-लब्धि

(ग) छोटी गतागत (घ) लघुदण्डक (ग)

(d) बाटा बहती अवस्था में गुणस्थान मिलता है ?

(क) 1,3,4 (ख) 1,5,6

(ग) 1,7,8 (घ) 1,2,4 (घ)

(e) भावदेव की आगति है-

(क) 111 (ख) 112

(ग) 198 (घ) 284 (क)

(f) समवायांग सूत्र के 27वें समवाय में वर्णित है-

(क) साधुजी के 27 गुण (ख) आचार्य के 36 गुण

(ग) सिद्ध के 8 गुण (घ) अरिहंत के 12 गुण (क)

(g) शंकितादि 10 दोष का वर्णन है-

(क) गवेषणैषणा में (ख) ग्रहणैषणा में

(ग) परिभोगेषणा में (घ) भाषा समिति में (ख)

(h) निर्बल से सबल जबरदस्ती छीन कर देवे तो दोष है-

(क)अभिहड़े (ख) मालोहड़े

(ग) अच्छिज्जे (घ) अज्झोयरए (ग)

(i) इनके लद्धिया में 3 ज्ञान की भजना होती है-

(क)ज्ञान लब्धि (ख) चारित्र लब्धि

(ग) दर्शन लब्धि (घ) चारित्राचारित्र लब्धि (घ)

(j) देवियों में जीव के भेद होते हैं-

(क)2 (ख) 4

(ग) 1 (घ) 14 (क)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1=(10)**

(a) 'आलम्बन' ईर्या समिति का कारण है। (हाँ)

(b) बादर वनस्पतिकाय की आगति 74 की है। (हाँ)

(c) मिथ्यादृष्टि जीव 12 देवलोक तक जा सकते हैं। (नहीं)

(d) समूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं। (हाँ)

(e) भावदेव के देवायु का उदय होता है। (हाँ)

(f) भव्य द्रव्य देव के मनुष्यायु का ही उदय होता है। (नहीं)

(g) समुच्चय जीव में 3 अज्ञान की नियमा होती है। (नहीं)

(h) 'काय गुप्ति' काल से जीवन पर्यन्त होती है। (हाँ)

(i) दान लब्धि में 5 ज्ञान 3 अज्ञान की भजना होती है। (हाँ)

(j) जीवन रहित करने की क्रिया करना 'समारंभ' है। (नहीं)

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1=(20)**

(a) मेरा वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के 24वें अध्ययन में है। समिति गुप्ति

(b) मेरे लद्धिया और अलद्धिया दोनों में चार ज्ञान की भजना होती है। अवधि ज्ञान, मनः पर्यवज्ञान

(c) मुझमें पन्द्रह में से एक ही योग होता है। अनाहारक

(d) मैं अगले भव में देवगति में ही उत्पन्न होता हूँ। भव्य द्रव्य देव

(e) मुझमें अपर्याप्त व अनाहारक दोनों अवस्था मिलती है। बाटा बहती अवस्था

(f) मेरे अपर्याप्त में अवधि ज्ञान नहीं होता है। तिर्यञ्च

(g) मैं 35 वाणी के गुणों से युक्त होता हूँ। देवाधिदेव

(h) मैं अवधिज्ञान का चौथा भेद हूँ। हीयमान

(i) मेरा अन्तर जघन्य एक सागर झाझेरा है। नरदेव

(j) मेरे भवस्थ और सिद्ध ये दो भेद होते हैं। केवलज्ञान

प्र.4 एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए। 14x2=(28)

(a) समिति को परिभाषित कीजिए।

उ. संयम की रक्षा के लिये उपयोग पूर्वक की जाने वाली मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को 'समिति' कहते हैं।

(b) माया में एकाग्रता का उदाहरण दीजिए।

उ. जैसे कोई पुरुष अनजान जगह रहा हुआ दूसरों को ठगने के लिए पुत्रादि के विषय में बोले कि-'न तो यह मेरा पुत्र है और न मैं इसका पिता हूँ' इत्यादि।

(c) छोटी गतागत के आधार पर युगलिक के 5 भेद लिखिए।

उ. 1. असंख्यात वर्षों की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्य 2. अकर्मभूमिज मनुष्य

3. छप्पन अंतरद्वीप के मनुष्य 4. खेचर तिर्यंच युगलिया और

5. थलचर तिर्यंच युगलिया के पर्याप्त।

(d) 5 देव के थोकड़ों का अल्पबहुत्व द्वार लिखिए।

उ. सबसे थोड़े नरदेव, उनसे देवाधिदेव संख्यात गुणे, उससे धर्मदेव संख्यात गुणे, उससे भव्य द्रव्यदेव असंख्यात गुणे, उससे भावदेव असंख्यात गुणे हैं।

(e) धर्मदेव का जघन्य संचिट्ठणकाल किस अपेक्षा से कहा है?

उ. कोई धर्मदेव अशुभ भाव को प्राप्त करके फिर पीछा एक समय मात्र शुभ भाव को प्राप्त कर तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए धर्मदेव का जघन्य संचिट्ठणकाल परिणामों की अपेक्षा से एक समय का कहा गया है।

(f) गवेषणैषणा व परिभोगैषणा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उ. गवेषणैषणा- आहार आदि ग्रहण करने के पहले शुद्धि-अशुद्धि की खोज करना गवेषणैषणा है।

परिभोगैषणा- आहारादि भोगते समय शुद्धि-अशुद्धि का उपयोग रखना परिभोगैषणा है।

(g) 'जोगे दोष' का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

उ. लेपनादिक सिद्धि (जिसका लेप करने से आकाश में उड़ना, जल पर चलना आदि हो) बतलाकर आहार आदि लेवे तो योग दोष।

(h) 'अपमाणं' का अर्थ लिखिए।

उ. तृष्णा अथवा जिह्वा के स्वाद के लिए खुराक (प्रमाण) से अधिक आहार करना अप्रमाण दोष है।

(i) ज्ञान लब्धि के थोकड़ों के द्वारों की पहली गाथा लिखिए।

उ. जीव गई इंदिय काए, सुहुम पज्जत्तए भवत्थे य।

भवसिद्धिए य सण्णी, लद्धि उवओग जोगे य।।1।।

(j) मनःपर्यव ज्ञान की स्थिति लिखिए।

उ. मनःपर्यव ज्ञान की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़पूर्व की।

(k) 9वें देवलोक की आगति-गति लिखिए।

उ. नौवें देवलोक की आगति 4 की- साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि।

गति 1 की संख्यात वर्ष के कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त की।

(l) नरदेव व धर्मदेव की अवगाहना लिखिए।

उ. नरदेव की अवगाहना जघन्य 7 धनुष की, उत्कृष्ट 500 धनुष की। धर्मदेव की अवगाहना जघन्य दो हाथ की उत्कृष्ट 500 धनुष की।

(m) नारकी के अपर्याप्ता में सास्वादन नहीं मानने का आधार लिखिए।

उ. नारकी के अपर्याप्त में सास्वादन समकित नहीं होती, क्योंकि सास्वादन गुणस्थान में नरकानुपूर्वी का उदय नहीं होता । बिना नरकानुपूर्वी के उदय के कोई जीव नरक गति में नहीं जाता।

(n) सन्नी के पर्याप्त में कार्मण काययोग मानने का कारण लिखिए।

उ. कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य में केवली समुद्घात के समय कार्मण काययोग होता है, इस अपेक्षा से सन्नी का पर्याप्त भेद भी लिया है।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में लिखिए : - **14x3=(42)**

(a) तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति व गति लिखिए।

उ. तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति 87 की- 49 की लड़ी, 31 देवता के (भवनपति से 8वें देवलोक तक) और 7 नारकी के पर्याप्त। गति 92 की-87 ऊपर बताये अनुसार व असंख्यात वर्ष के कर्मभूमिज मनुष्य, अकर्मभूमिज मनुष्य, अन्तरद्वीप के मनुष्य, थलचर और खेचर युगलिये।

(b) भव्य द्रव्य देव की स्थिति कितनी है ? कारण सहित स्पष्ट कीजिए।

उ. भव्य द्रव्य देव की स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

अन्तर्मुहूर्त्त की आयुष्य वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय देवताओं में उत्पन्न हो सकता है, इसलिए भव्य द्रव्य देव की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है। तीन पल्योपम की आयुष्य वाला देवकुरु उत्तरकुरु का युगलिया मनुष्य और स्थलचर युगलिक तिर्यंच, देवताओं में उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिए उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

(c) पाँच देवों का थोकड़ा किस आगम से है ? उसके द्वारों के नाम लिखिए।

उ. श्री भगवती सूत्र के 12वें शतक के नवमें उद्देशक में पाँच देवों का थोकड़ा चलता है।

द्वार- 1. नाम द्वार 2. अर्थ द्वार 3. आगति द्वार 4. गति द्वार

5. स्थिति द्वार 6. वैक्रिय द्वार 7. संचिट्ठणकाल द्वार 8. अवगाहना द्वार

9. अन्तर द्वार 10. अल्पबहुत्व द्वार

(d) नरक गति के अपर्याप्त आहारक में कौन-कौनसे जीव के भेद तथा योग होते हैं ?

उ. जीव के भेद- 2 असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त, सन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त

योग-2 वैक्रिय मिश्र तथा वैक्रिय काय योग।

(e) चारों गति के अपर्याप्त आहारक व अनाहारक में गुणस्थान, योग, उपयोग व लेश्या की संख्या लिखिए।

उ.

	गुण	योग	उपयोग	लेश्या
नारकी अपर्याप्त अनाहारक	2	1	8	3
नारकी अपर्याप्त आहारक	2	2	9	3
तिर्यञ्च अपर्याप्त अनाहारक	3	1	5	6
तिर्यञ्च अपर्याप्त आहारक	3	2	6	6
मनुष्य अपर्याप्त अनाहारक	3	1	7	6
मनुष्य अपर्याप्त आहारक	3	2	8	6
देव अपर्याप्त अनाहारक	3	1	8	6
देव अपर्याप्त आहारक	3	2	9	6

(f) ईर्या समिति के चौथे कारण को स्पष्ट कीजिए।

उ. यतना के चार भेद- 1.द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव

1. द्रव्य से- षट्काय के जीवों को तथा काँटा आदि अजीव पदार्थों को देखकर चले।

2. क्षेत्र से- झूसरा प्रमाण अर्थात् चार हाथ सामने देखकर चले।

3. काल से- दिन को देखकर व रात्रि में पूँज कर चले।

4. भाव से- पाँच इन्द्रियों के विषय और पाँच स्वाध्याय के भेद इन दस बोलों को वर्जकर (टालकर) उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित) चले।

(g) नारकी व देवता में 3 अज्ञान की भजना का कारण स्पष्ट कीजिए।

उ. पहली नारकी, भवनपति तथा वाणव्यन्तर देवों में असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी जाते हैं। जब तक वे नारकी-देवता में अपर्याप्त रहते हैं, तब तक वे मति, श्रुत ये 2 अज्ञान वाले होते हैं। पर्याप्त होने पर विभंग ज्ञान होता है। जबकि सन्नी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव जब उक्त स्थानों में जाते हैं तो अज्ञान तीन ही होते हैं। अज्ञान में 2 व 3 दोनों विकल्प होने से इनमें 3 अज्ञान की भजना होती है।

(h) अच्छिज्जे, अणिसिट्ठे, मालोहडे में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ. अच्छिज्जे- निर्बल से सबल जबरदस्ती छीन कर देवे तो आच्छेद्य दोष।

अणिसिट्ठे- दो के शामिल की वस्तु एक दूसरे के बिना आज्ञा के देवे तो अनिःसृष्ठ दोष।

मालोहडे- सीढ़ी-निसरणी आदि लगाकर ऊँचे, नीचे, तिरछे आदि स्थान से जिससे अयतना होवे, वहाँ से वस्तु निकालकर देवे तो मालापहृत दोष।

(i) नारकी देवता के अपर्याप्ता में ज्ञान-अज्ञान की नियमा-भजना लिखिए।

उ. पहली नरक, भवनपति, वाणव्यन्तर के अपर्याप्त में 3 ज्ञान की नियमा, 3 अज्ञान की भजना। दूसरी नारकी से छठी नारकी, ज्योतिषी से नवग्रैवेयक तक के अपर्याप्त में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान की नियमा। सातवीं नारकी के अपर्याप्त में 3 अज्ञान की नियमा। पाँच अनुत्तर विमान के अपर्याप्त में 3 ज्ञान की नियमा।

(j) उद्गम के 16 दोष की गाथा लिखिए।

उ. आहाकम्मुद्देसिय, पूईकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा, पाहुडियाए पाओअर कीय पमिच्चे।।1।।
परियट्टिय अभिहडे, उब्भिन्ने मालाहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे।।2।।

(k) ज्ञान लब्धि का उपयोग द्वार लिखिए।

उ. साकारोपयोग अनाकारोपयोग में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन में 4 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना। अवधिदर्शन में चार ज्ञान की भजना, 3 अज्ञान की नियमा। केवलदर्शन में केवलज्ञान की नियमा।

(l) आहार छोड़ने के 6 कारण लिखिए।

उ. 1. शूलादि रोग उत्पन्न होने पर।
2. ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए।
3. प्राणियों की रक्षा के लिए।
4. तपस्या करने के लिए।
5. शरीर का त्याग करने के लिए।
6. देवता मनुष्य, तिर्यंच संबंधी उपसर्ग उत्पन्न होने पर

(m) **श्रुतज्ञान के 14 भेदों के नाम लिखिए।**

उ. श्रुतज्ञान के 14 भेद- **1. अक्षर श्रुत** **2. अनक्षर श्रुत** **3. संज्ञी श्रुत**
4. असंज्ञी श्रुत **5. सम्यक् श्रुत** **6. मिथ्या श्रुत** **7. सादि श्रुत**
8. अनादि श्रुत **9. सपर्यवसित श्रुत** **10. अपर्यवसित श्रुत** **11. गमिक श्रुत**
12. अगमिक श्रुत **13. अंगप्रविष्ट श्रुत** **14. अंग बाह्य श्रुत**

(n) **10 प्रकार की स्थंडिल भूमि के अंतिम 5 प्रकार लिखिए।**

उ. 1. जघन्य एक हाथ चौरस भूमि पर परठे।

2. नीचे चार अंगुल अचित्त भूमि पर परठे।

3. ग्राम-नगर-उद्यानादि के अत्यन्त निकट न परठे।

4. चूहे के बिल आदि रहित भूमि परठे।

5. त्रस प्राणी तथा बीजादि रहित भूमि पर उपयोग सहित परठे।